आने वाले वक्त में और बढ़ सकती है भारत में गरीबी

डॉ० पंकज कुमार
रिसोर्स पर्सन
वाणिज्य विभाग,
डॉ० राम मनोहर लोहिया स्मारक महाविद्यालय,
मुजफ्फरपुर।

सार–संक्षेप :

भारत में कुल आबादी के 28 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। अगले वर्ष यह संख्या 30 प्रतिशत को पार कर सकती है। एशियाई विकास बैंक (एडीबी) का कहना है कि आने वाले समय में भारत में गरीबी और बढ़ेगी। इसको बढ़ाएंगे वे किसान, जो सरकार की गलत नीतियों के चलते कृषि छोड़ने को मजबूर हो रहे हैं। एडीबी ने गरीबी और बेरोजगारी रोकने के लिए भारत को वित्तीय नीति में परिर्वतन करने का सुझाव भी दिया है। अपनी ताजा रिपोर्ट 'इंडियाज इकोनामी टू मॉडरेट' में एडीबी ने कहा है कि सरकार के दावों के बावजूद देश का कृषि क्षेत्र पिछड़ता जा रहा है और किसान खेती छोड़ने को मजबूद हो रहे हैं। यही कारण है कि जिस क्षेत्र से देश के 60 प्रतिशत लोग जुड़े हुए हैं, उसका सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में योगदान कम होकर 18.5 प्रतिशत पर आ गया है। इससे देश में गरीबी व बेरोजगारी बढ़ रही है।

कुंजी : घरेलू उत्पाद, आबादी, कृषि, बेरोजगारी, नीतिया

भूमिका

भारत में 28 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। अगले वर्ष यह संख्या 30 प्रतिशत को पार कर सकती है। सरकारी दावे कुछ भी कहे मगर एशियाई विकास बैंक (एडीबी) का कहना है कि आने वाले समय में भारत में गरीबी और बढ़ेगी। इसको बढ़ाएंगे वे किसान, जो सरकार की गलत नीतियों के चलते कृषि छोड़ने को मजबूर हो रहे हैं। मौजूदा समय में भारत में कुल आबादी के 28 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं।

अगले वर्ष तक यह संख्या 30 प्रतिशत को पार कर सकती है। एडीबी ने गरीबी और बेरोजगारी रोकने के लिए भारत को वित्तीय नीति में परिर्वतन करने का सुझाव भी दिया है। अपनी ताजा रिपोर्ट 'इंडियाज इकोनामी टू मॉडरेट' में एडीबी ने कहा है कि सरकार के दावों के बावजूद देश का कृषि क्षेत्र पिछड़ता जा रहा है और किसान खेती छोड़ने को मजबूद हो रहे हैं। यही कारण है कि जिस क्षेत्र से देश के 60 प्रतिशत लोग जुड़े हुए हैं, उसका सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में योगदान कम होकर 18.5 प्रतिशत पर आ गया है। इससे देश में गरीबी व बेरोजगारी बढ़ रही है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि कृषि छोड़ रहे किसानों के लिए रोजगार के ज्यादा अवसर नहीं है। उनका मात्र निर्माण क्षेत्र में रोजगार के थोड़े अवसर मिल रहे हैं। रोजगार के ज्यादा अवसर सेवा आई.टी., रियल एस्टेट व रिटेल क्षेत्र तक सिमटता जा रहा है। इनमें गरीब व कम पढ़े–लिखे किसानों के लिए कोई जगह नहीं है।

एडीबी ने इस बात पर काफी हैरानी व्यक्त की है कि भारत सरकार ने 10वीं व 11वीं पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि क्षेत्र के विकास के लिए कुल 1 लाख 40 हजार करोड़ रुपये के निवेश का प्रावधान किया है, उसके सकारात्मक परिणाम अभी सामने क्यों नहीं आ रहे हैं। ऐसे में इस योजना के सही क्रियान्वयन पर सवाल उठना स्वाभाविक है। रिपोर्ट में गरीबी रोकने के लिए सरकार को वित्तीय नीति में बदलाव का सुझाव देते हुए कहा गया है कि इसके लिए ब्याज दरों को कम करना जरूरी है। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र की वित्तीय सहायता बढ़ाई जाये ओर कुछ वस्तुओं पर आयात शुल्क में भारी कटौती की जाये। एडीबी इंडियन रेजिडेंट मिशन के अर्थशास्त्री नरहरि राव का कहना है औद्योगिक विकास के चक्कर में सरकार कृषि क्षेत्र को भूल रही है। कृषि जमीनों को औद्योगिक प्रयोग के लिए दिया जा रहा है। इसे रोकना होगा और सरकार को औद्योगिक व कृषि क्षेत्र के विकास के दरम्यान संतुलन बनाये रखना होगा, तभी कुछ फायदा हो सकता है।

असंतुलित विकास की त्रासदी

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की शहरीकरण को लेकर जारी की गयी रपट देखकर केंद्र और राज्य सरकारों के कान खड़े हो जाने चाहिए। यह ठीक है कि वर्तमान में भारत अनेक देशों के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहा है और आर्थिक विकास की दृष्टि से वह विश्व में दूसरे स्थान पर है, लेकिन शहरीकरण के मामले में उसकी स्थिति दयनीय है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों की हालत पहले से दुर्दशाग्रस्त है। यही कारण है कि नागरिक सुविधाओं की उपलब्धता और रहन–सहन के स्तर पर हमारा देश विकसित देशों के पैमाने से बहुत पीछे है। आज देश के राजनेता जनता को यह स्वप्न दिखाते नहीं थकते कि वर्ष 2020 तक भारत विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा हो जायेगा मगर ऐसा होता नजर नहीं आता। शहरी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था के मुकाबले ग्रामीण अर्थव्यवस्था अभी भी खराब हालत में है और इसी कारण गांव से बड़ी संख्या में शहरों की ओर पलायन हो रहा है। कृषि क्षेत्र की कमजोरी के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर न के बराबर हैं। कस्बों और छोटे शहरों में तो छिटपुट विकास हो रहा है, लेकिन गांवों के उत्थान को लेकर कोई भी आशावान नहीं।

भले ही चुनाव के अवसर पर राजनेताओं की घोषणाओं से किसानों को थोड़ी–बहुत राहत मिल जाती हो, लेकिन उनकी बुनियादी स्थिति जस की तस है। छोटे किसानों को सरकारी नीतियों और योजनाओं का लाभ मुश्किल से मिल पाता है। कृषि आधारित उद्योग लगातार रूग्ण होते चले जा रहे हैं और इसका ताजा सबूत है चीनी उद्योग की खस्ता हालत। गन्ने के मूल्यों में वृद्धि करने वाले राजनेताओं के पास इसका कोई जबाब नहीं है कि चीनी मिलें अपने बढ़ते नुकसान की भरपाई कैसे करे? सरकारें यह भी नहीं चाहतीं कि चीनी के दाम बढ़े। इस सबके चलते सरकारी और सहकारी क्षेत्र की तमाम चीनी मिलें बंद होने के कगार पर पहुंच गयी हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर और भी घटते जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे को मजबूत करने के लिए बजट में धनराशि तो आवंटित होता है, लेकिन जैसा कि पूर्व में देश के अग्रणी नेता कह चुके हैं, एक रुपये में दस पैसे ही खर्च हो पाते हैं। यही वजह है कि अनेक ग्रामीण इलाकों में विकास का नामोनिशान तक दिखाई नहीं देता। आज अगर ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली, पानी, सड़क के साथ शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सार्थक एवं नियोजित प्रयास किये जा सकें तो गांवों से शहरों की तरफ पलायन रोका जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों के लोग रोजी–रोटी की तलाश में या तो शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर होते हैं या फिर स्थानीय स्तर पर ऐसे कार्य करने लगते हैं जिनसे उन्हें लाभ के बजाय हानि होने लगती

है। यद्यपि देश की करीब 65 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है, लेकिन विकास के ज्यादातर कार्यक्रम शहरों तक सीमित हैं। पिछले 10 वर्षों में देश में जो भी उल्लेखनीय विकास हुआ है वह शहरी क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता है। संभवतः इसी शहरी चमक–दमक के आधार पर राजग सरकार ने 2004 के लोकसभा चुनाव में 'इंडिया शाइनिंग' का नारा देकर पुनः सत्ता में आने की कोशिश की थी, लेकिन उसे मुंह की खानी पड़ी। राजग के बाद सत्ता में आयी संप्रग सरकार से जनता को उम्मीद बंधी थी कि यह सरकार आम आदमी की सरकार साबित होगी, लेकिन तीन वर्ष बीत जाने के बावजूद आम आदमी के हित के लिए कुछ खास किया नहीं जा सकता है। संप्रग सरकार ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विकास के लिए जो तमाम योजनाएं घोषित कीं वे या तो कागजों तक सीमित रहीं या फिर उनकी गति इतनी धीमी है कि वे प्रभावी सिद्ध नहीं हो पा रही है।

केंद्र सरकार यह आड़ ले सकती है कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का दारोमदार मुख्यतः राज्य सरकारों पर है और वे अपना काम सही तरीके से नहीं कर रहीं, लेकिन सवाल यह है कि आखिर वह ऐसी हालत में भी चुपचाप क्यों बैठी है? क्या यह जरूरी नहीं कि वह राज्य सरकारों पर दबाव बनाये अथवा उन्हें प्रेरित करें? आज के हमारे राजनेताओं का अधिकांश समय अपनी कुर्सी बचाने अथवा सत्ता पाने के लिए गोटियां बैठाने में निकल जाता है। बिरले ही राजनेता ऐसे है जो गरीब जनता के गिरते हुए जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के प्रति गंभीर हैं। इस मामले में जहां तक नौकरशाहों की बात है तो उनके बारे में कुछ कहना व्यर्थ है।

ऐसा लगता है कि नौकरशाही अब इतनी खुदगर्ज हो चुकी है कि उसे आम जनता का दुख–दर्द दिखाई और सुनाई ही नंहीं देता। नौकरशाहों का अधिकांश समय अच्छी पोस्टिंग पाने और फिर वहां जमे रहने में खप जाता है, जो थोड़ा–बहुत समय बचता है उसमें वे कामचलाऊ ढ़ंग से विकास कार्यों की ओर ध्यान देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के उत्थान से संबंधित सभी शीर्ष अधिकारी आम तौर पर शहरों मं ही निवास करते हैं। वे ग्रामीण क्षेत्रों की सुधि मुश्किल से लेते हैं। यही कारण है कि ग्रामीण इलाके उपेक्षित नजर आ रहे हैं। यदि सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में वास्तव में विकास करना चाहती है फिर उसे शहरों के समानांतर नौकरशाही के ढांचे का निर्माण करना होगा। इस नौकरशाही का एक मात्र उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का उत्थान करना होना चाहिए।

निस्संदेह शहरी क्षेत्रों में सब कुछ ठीक नहीं है। शहरी क्षेत्र जनसंख्या की बोझ से कराह रहे हैं। बेतरतीब विकास और अतिक्रमण के चलते शहरों में नागरिक सुविधाओं के ढांचे का सही तरीके से विकास नहीं हो पा रहा जिनसे शहरों के नियोजित विकास में आने वाली बाधाएं आसानी से दूर की जा सकें? आज शहरों में जो विकास कार्य हो रहे हैं उनके दीर्घकालिक परिणाम कोई बहुत सुखद नहीं नजर आते। शहरी विकास के नाम पर बड़े–बड़े शॉपिंग मॉल बना देने मात्र से सब कुछ ठीक नहीं हो जायेगा। शहरों को व्यावसायिक क्षेत्रों के अलावा अच्छे स्कूल, अस्पताल और सड़कें भी चाहिए। इसी तरह बिजली–पानी की पर्याप्त उपलब्धता भी आवश्यक है।

देश के शहरों की एक गंभीर समस्या रिहाइशी भूमि की किल्लत और आवासीय इलाकों में बढ़ती व्यावसायिक गतिविधियां हैं। ऐसी ही गतिविधियों के चलते पिछले दिनों उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर दिल्ली में बड़े पैमाने पर तोड़–फोड़ की गयी हजारों लोगों को अपने व्यावसायिक ठिकानों और आजीविका के साधन से हाथ धोना पड़ा। आखिर इसमें दोष किसका था–जनता का था या फिर राजनेताओं और नौकरशाहों का? यह वह प्रश्न है जिस पर सारे देश में बहस होनी चाहिए, क्योंकि दिल्ली जैसे हालात अन्य

शहरों में भी बन रहे हैं। यदि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की धीमी और असंतुलित रफ्तार की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो आने वाले समय में रहन–सहन के स्तर पर समस्याएं और अधिक जटिल होंगी। इससे शहरीकरण और अधिक विकृत रूप ले सकता है। निश्चित रूप से ऐसी स्थिति में लोंगों की समस्याएं बढ़ने के साथ–साथ एक प्राचीन एवं सुसंस्कृत देश के रूप में भारत की अंतर्राष्ट्रीय छवि और अधिक गिर सकती है।

कुछ चुने हुए क्षेत्रों में ही है रोजगार

अर्थशास्त्र में एक कहावत है कि नीतियों से कितना फायदा हो रहा है, इससे ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि इससे किसको फायदा हो रहा है। अगर भारत में 'रोजगार' के परिप्रेक्ष्य में इस कहावत को पैमाना बनाकर देखा जाये तो, जो दृश्य उभरकर सामने आता है, वह ज्यादा सुखदायी है। वर्ष 1991 में वित्त मंत्री के रूप में जब डॉ. मनमोहन सिंह ने आर्थिक उदारीकरण की नतियों का आगाज किया था, तब यह कहा गया था कि इससे रोजगार को सर्वाधिक बढ़ावा मिलेगा। रोजगार के अवसर ज्यादा सृजित होंगे और नौकरियों के जरिये ज्यादा धन कमाने के लिए देश के युवाओं को विदेशों को नहीं जाना पड़ेगा। युवा वर्ग बेरोजगार नहीं रहेगा। सिर्फ एक बात को छोड़कर उनकी सारी बातें सही साबित हुई हैं। पहले की तुलना में नौकरियों में ज्यादा धन मिल रहा है और नौकरियों के लिए विदेश जाने की प्रवृति में शायद कमी आई है। आर्थिक सुधारवाद के उदारीकरण मॉडल को लेकर यह कहा जाता रहा है कि इसका लाभ काफी सीमित होता है। भारत में ऐसा ही रहा है। रोजगार की वृद्धि को आंकड़ों के आईने में देखा जाये, तो वर्ष 1991–92 के दौरान रोजगार में वृद्धि दर आधा प्रतिशत थी। वर्ष 1999 में यह बढ़कर 2.6 प्रतिशत हुई और 2004–05 में यह करीब 2.6 प्रतिशत दर्ज की गयी है।

पर मुख्य प्रश्न यह है कि इसका लाभ किसको मिला है। भारत में मात्र 10 प्रतिशत रोजगार संगठित क्षेत्र में हैं और शेष 90 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में। असंगठित क्षेत्र में कृषि से लेकर तमाम क्षेत्र आते हैं, जिन्हें 'कुशल' या 'तकनीकी विशेषज्ञों' की जरूरत नहीं होती। वे श्रमिक या कर्मचारी की श्रेणी में आते हैं, अधिकारियों की श्रेणी में नहीं। भारतीय बाजार में बहुराष्ट्रीय व निजी कंपनियां बहुतायत संख्या में आ रही है। इन्होंने बीमा, बैंक व अन्य क्षेत्रों में अपनी धाक जमाना शुरू कर दिया है। लेकिन इनमें नौकरियां पाने वाले दरअसल वे लोग हैं, जो अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं। कोई कंप्यूटर विशेषज्ञ है, तो कोई सॉफ्टवेयर इंनीनियर, कोई एक्जिक्यूटिव है, तो कोई माकेटिंग रणनीति बनाने में विशेषज्ञता रखता है। ऐसे लोगों को वेतन भी अधिक मिल रहा है। इन वर्गों के लिए उदारीकरण वरदान की तरह आया है।

सवाल यह है कि उन लोगों की बेहतररी के लिए क्या हुआ, जिनमें ये सब योग्यताएं नहीं है। विशेष योग्यताएं रखने वाले लोग कुछ मेट्रो शहरों तक ही सिमटे हुए हैं। अभी योजना आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि आने वाले समय में देश में व्यावसायिक दक्षता रखने वाले लोगों की कमी हो जायेगी। जिस तरह से विदेशी कंपनियां भारत में कार्यालय खोल रही हैं, उस हिसाब से तो हमारे यहां विशेष दक्षता रखने वाले अधिकारियों की कमी हो जायेगी। यह हालत तब है, जब अपने ज्ञान, क्षमता व सामर्थ के कारण इनमें से एक व्यक्ति दो या उससे ज्यादा लोगों का काम कर रहा है।

अब उन 90 प्रतिशत लोगों की बात करते हैं, जो तकनीकी रूप से विशेषज्ञ नहीं हैं। सच्चाई यह है कि पिछले 10–15 साल के दौरान ऐसे लोगों के लिए रोजगारों में महज पांच से सात प्रतिशत का इजाफा हुआ। सबसे अधिक मार उन पर पड़ रही है, जो अनुबंध नौकरी पर हैं। सरकारी के साथ–साथ निजी क्षेत्र ने भी ऐसे लोगों के लिए अनुबंध प्रणाली लागू कर दी है। जो लोग पहले नियमित थे, उन्हें भी अब अनुबंध

व्यवस्था के तहत आने के लिए मजबूर किया जा रहा है, चाहे वे क्लर्क हों, गार्ड हों या चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी। इसकी तुलना में अधिकारियों को, जो पहले से ही धनाढ्य हैं, पैकेज के रूप में ज्यादा धन मिल रहा है। जिस कारण आने वाले वक्त में बढ़ सकती है भारत में गरीबी।

References :

[1] Economic Development and Environemnt Issues/ P.A. Koli

[1] Women Entrepreneurship and Economic Development / Sanjay Tiwary

[1] Co-operatives and Economic Development / edited by Tapas R. Dash

[1] Natural Resources and Economic Development / edited by Padmaja Mishra